भारतीय दार्शनिक-परम्परा और स्याद्वाद

(श्रमणसंघीय साध्वी श्रीउमरावकुंवरजी "अर्चना")

विश्व का विचार एवं चिन्तन करनेवाली परस्पर दो धाराएँ हैं– सामान्य–गामिनी और विशेष–गामिनी। पहली धारा अथवा दृष्टि सारे संसार में विद्यमान वस्तुमात्र में समानता ही देखती है और दूसरी दृष्टि सारे विश्व में असमानता ही असमानता देखती है। सामान्य–गामिनी दृष्टि में एक मात्र जो विषय प्रतिभाषित होता है, वह एक है, अखंड है तथा सत् है। विशेष–गामिनी दृष्टि में एकता की तो बात ही क्या? समानता भी कृत्रिम प्रतीत होती है। विश्व की प्रत्येक वस्तु एक दूसरे से अत्यंत भिन्न परस्पर असंपृक्त, निरन्वय भेदों का पुंजमात्र है। इन दोनों दृष्टियों के आधार पर निर्मित प्रत्येक भारतीय दर्शन ने अपनी–अपनी चिन्तन प्रणाली निश्चित की है। सामान्य–गामिनी दृष्टि अद्वैतवाद के नाम से तथा विशेष–गामिनी दृष्टि शून्यवाद, क्षणिकवाद के नाम से विख्यात हुई।

भारतीय-दर्शनों में जैन-दर्शन के अतिरिक्त श्रमण भगवान् महावीर के समय जो दर्शन अति विख्यात थे तथा जो वर्तमान में अति विख्यात हैं, उनमें सांख्य-योग, वैशेषिक-न्याय, मीमांसक, वेदांत, बौद्ध और शाब्दिक हैं–ये दर्शन मुख्य हैं। वैदिक दर्शनों में षड्दर्शनों की परिगणना हो जाती है और अवैदिक दर्शनों में चार्वाक, जैन और बौद्ध दर्शन आते हैं। इस प्रकार भारतीय-दर्शन परम्परा में मूल में नव दर्शन होते हैं–चार्वाक, जैन, बौद्ध, सांख्य, योग, वैशेषिक, न्याय, मीमांसा और वेदांत। ये नव दर्शन भारत के मूल दर्शन हैं। कुछ विद्वानों ने यह भी कहा है कि अवैदिक दर्शन भी छह हैं– जैसे चार्वाक, जैन, सौत्रान्तिक वैभार्षिक, योगाचार और माध्यमिक। इस प्रकार भारत के मूल दर्शन द्वादश हो जाते हैं। शंकराचार्य अद्वैतवाद के प्रमुख प्रचारक तथा तथागत बुद्ध शून्यवाद के प्रवर्तक माने जाते हैं। अद्वैतवाद और शून्यवाद के आधार पर निर्मित दर्शनों ने किसी न किसी एक दृष्टि का आश्रय लेकर तत्त्व चिन्तन किया है। यद्यपि दोनों वाद ऐकांतिक हैं, फिर भी उन्हें अपने कथन को प्रमाणित करने के लिए जैन-दर्शन द्वारा प्ररूपित स्याद्वाद का आश्रय लेना पड़ा है। दार्शनिक विचार और वस्तु स्वरूप के कथन के लिए स्याद्वाद - सापेक्षवाद ही एक मात्र मार्ग है, शैली है जिसके द्वारा यथार्थ चिन्तन एवं यथार्थ कथन किया जा सकता है।

जैनदर्शन का अन्तर्नाद अनेकान्तवाद है। इसकी भित्तीपर ही सारा जैन सिद्धान्त आधारित है। 'उप्पने इवा, विगमे इवा, धुवेइवा' इस त्रिपदी को सुनकर महामति गणधर चतुर्दश पूर्वों की रचना कर लेते हैं। इस त्रिपदी में जो तत्त्व समाहित हैं, वह अनेकान्त है इस दृष्टि से समस्त जैन वाङ्मय का आधार अनेकान्त है, यह प्रमाणित

साध्वी श्रीउमरावकुंवरजी 'अर्चना'

हो जाता है। यह एक माना हुआ सत्य है कि वस्तु अनन्त धर्मात्मक है, उसके असंख्य पहलू हैं। ऐसी स्थिति में किसी एक शब्द द्वारा किसी एक धर्म के कथन से वस्तु का समग्र स्वरूप प्रतिपादित नहीं होता। तब समग्र स्वरूप के प्रामाणिक प्रतिपादन के लिए एक ही चारा है कि वस्तु के किसी एक धर्म को मुख्य रूप से कहा जाय और शेष धर्मों को गौण रूप में स्वीकार किया जाय। इस मुख्य और गौण भाव को अर्पणा और अनर्पणा कहते हैं।[१]

मुख्य एवं गौण भाव से अथवा अपेक्षा या अनपेक्षा से वस्तु तत्व की सिद्धि होती है। अनेकान्त दृष्टि विराट वस्तु तत्व को जानने का वह प्रकार है, जो विवक्षित धर्म को जानकर भी अन्य धर्मों का निषेध नहीं करता, उन्हें गौण या अविवक्षित कर देता है अर्थात् अस्तित्व की प्रधान रूप से विवक्षा है और नास्तित्व आदि की गौण रूप से। इस प्रकार स्याद्वाद, वस्तु तत्व के सम्यक् प्रतिपादन की निर्दोष शैली है।

अन्य दर्शनकारों ने अनन्त धर्मात्मक वस्तु के एक-एक धर्म को पकड़कर उसे ही समग्र वस्तु मान लेने की भूल की है। जैसे बौद्ध दर्शन वस्तु के क्षणिक पर्याय को ही समग्र वस्तु मान लेता है और वस्तु के द्रव्यात्मक नित्यपक्ष को सर्वथा अस्वीकार करता है। वेदान्त एवं सांख्य-दर्शन वस्तु को सर्वथा नित्य-कूटस्थ नित्य मानकर उसे क्षणिक पर्यायों का सर्वथा निषेध करता है। नैयायिक वैशेषिक दर्शन यद्यपि वस्तु में नित्यत्व और अनित्यत्व दोनों को मानते हैं तथापि वे किसी वस्तु को सर्वथा नित्य और किसी वस्तु को सर्वथा अनित्य भी मानते हैं। साथ ही वे पदार्थ के नित्यत्व और अनित्यत्व को पदार्थ से सर्वथा भिन्न मानते है, जबकि वह वस्तु का तादात्म्य स्वरूप है। ये दर्शनकार परस्पर विरोधी और एकांगी पक्ष को लेकर परस्पर में विवाद करते हैं। उनका यह विवाद अन्धगज न्याय की तरह है।

योगदर्शन में स्याद्वाद :

योगदर्शन सांख्यदर्शन की एक शाखा है। योग और सांख्य के

---

[१] 'अर्पितानर्पित सिद्धे' : – आचार्य उमास्वाति
— तत्वार्थ सूत्र अ. ५ सु. ३२

अहंकार में अंध हो, करे सदैव प्रपंच ।
जयन्तसेन मनुज वही, खोता सद्गुण संच ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अधिकांश सिद्धान्त समान हैं। इनमें मुख्य अन्तर यही है कि सांख्य पुरुष को अकर्ता मानता है और योग परमेश्वर को मानकर उसकी भक्ति पर विशेष बल देता है इसलिए इसे ईश्वरवादी सांख्य भी कह देते हैं तथा योग पर विशेष बल देने से योगदर्शन कहते हैं। योगदर्शन में भी सांख्य-दर्शन की तरह प्रकृति, पुरुष आदि पच्चीस तत्त्व माने गए है किन्तु वर्तमान में योग दर्शन की विधिवत् व्यवस्था करने वाले महर्षि पतंजलि हैं।

जगत् की नित्यानित्यता :

योग-दर्शन (सेश्वरवादी सांख्य-दर्शन) के मान्य ग्रन्थ पातंजल योगसूत्र के भाष्य में महर्षि व्यास ने जगत की नित्यानित्यता के बारे में अनेकान्तवाद का आश्रय लेकर निम्न प्रकार से कथन किया है —

अपर[१] आह धर्मानभ्यधिको धर्मी पूर्वतत्वानतिक्रमात् । पूर्वापरावस्थाभेदमनुपतितः कौटस्थ्येन विपरिवर्तेत पद्यन्वयी स्यादिति। अयमदोषः कस्मात् एकान्तानभ्युपगमात्। तदेतत् त्रैलोक्यं व्यक्तरपंति कस्मात् नित्यत्वप्रतिषेधात् । अपेतमप्यस्ति विनाशप्रतिषेधात्।[२]

उपर्युक्त सूत्र में बौद्धदर्शन की शंका का समाधान करने के लिए अनेकान्तवाद का अनुसरण करते हुए भाष्यकार ने संकेत किया है—

अयमदोषः कस्मात् एकांतानभ्युपगमात् ।

वाचस्पतिमिश्र ने अनेकान्तवाद की कथन-प्रणाली का आश्रय लेकर योग-भाष्य की व्याख्या में आप लिखते हैं—

"कटककुण्डलकेयूरादिम्यो भिन्नाभिन्नस्य सुवर्णस्य भेद विवक्षया सुवर्णस्य कुण्डलादन्यत्वम्। तथा च कटककारी सुवर्णकारः कुण्डलादभिन्नात्सुर्वात् अन्यत्कुर्वन्नन्यत्वकारणम्।"

कुल मिलाकर इसका सारांश इतना ही है कि कटक कुण्डल आदि धर्मों से सुवर्ण रूप धर्मी भिन्न अथवा अभिन्न हैं। भेद विवक्षा से वह भिन्न है और अभेद विवक्षा से अभिन्न है इसके अलावा योगदर्शन की भोजदेव कृत राजमार्तण्ड नामकवृत्ति में भी अनेकांतवाद के अनुरूप ही धर्म-धर्मी के भेदाभेद को स्वीकार किया गया है।

पातंजल योग-भाष्य में जैनदर्शन के अनुरूप पदार्थ को सामान्य-विशेष उभयात्मक माना गया है। उदाहरण के रूप में निम्न सूत्र उद्धृत हैं—

'सामान्य-विशेषणात्मनोऽर्थस्य।[३]

य एतेष्वभिव्यक्तानभिव्यक्तेषु धर्मेष्वनुपाती सामान्य विशेषात्मासोऽन्वयी धर्मी।[४]

सामान्य-विशेष समुदायोऽत्र द्रव्यम्।[५]

योगसूत्र के उक्त सूत्रपाठों का आशय यह है कि पदार्थ सामान्य विशेष उभयरूप हैं।

इस प्रकार योगदर्शन में अनेकान्तवादात्मक आपेक्षिक कथनों के दर्शन होते हैं।

सांख्यदर्शन में स्याद्वाद :

सांख्य-दर्शन भी जैन और बौद्ध दर्शनों की तरह वेदों को प्रमाण नहीं मानता है। यह यज्ञयागादि हिंसा मूलक कर्मकांड का विरोधी है और मुक्ति के तत्त्वज्ञान एवं अहिंसा को मुख्यता देता है। जैनदर्शन के आत्म-बाहुल्यवाद और बौद्ध दर्शन के क्षणिकवाद की तरह परिणामवाद को मानता है। सांख्य-दर्शन के आद्य प्रणेता प्रवर्तक या व्यवस्थापक महर्षि कपिल माने जाते हैं और इनका जन्म भी जैन और बौद्ध तीर्थंकरों की तरह क्षत्रियकुल में होना माना जाता है। कुछ लोग कपिल को ब्रह्मा का पुत्र बताते हैं और भागवत में इन्हें विष्णु का अवतार कहा है।

सांख्य-दर्शन की दो धाराएँ हैं— सेश्वरसांख्य और निरीश्वरसांख्य। सेश्वर-सांख्य-योग-दर्शन और निरीश्वरसांख्य सिर्फ सांख्यदर्शन के नाम से अभिहित होता है। उक्त दोनों प्रकार के सांख्यों ने अपने-अपने चिन्तन में अनेकान्तवाद का आश्रय लिया है। जैन-दर्शन की तरह निरीश्वरवादी ने भी प्रकृति को उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक माना है या आचार्य वाचस्पति के अनुमान के उदाहरण में वह्नित्व को सामान्य विशेषात्मक मानते हुए अनेकान्तवाद का समर्थन किया है। यथा— "यथा धूमात् वह्नित्वसामान्यविशेषः पर्ततेऽनु मीयते ।"

जैसे धूम के ज्ञान से वह्नित्व रूप सामान्य विशेषका पर्वत में अनुमान होता है। यहाँ पर वह्नित्व को सामान्य एवं विशेष उभयरूप से स्वीकार करने में ही अनेकान्तवाद की स्वीकृति है। अनेकान्तवाद भी तो यही कहता है कि वस्तु सामान्य विशेष, नित्य-अनित्य आदि धर्मों से संयुक्त है, लेकिन उनका कथन—अभिव्यक्ति अपेक्षा से होती है।

मीमांसा-दर्शन में स्याद्वाद :

मीमांसा - दर्शन के प्रथम प्रस्तावक महर्षि जैमिनी माने जाते हैं। उनके द्वारा रचित मीमांसा-सूत्रों के कारण इसे जैमिनीय दर्शन भी कह दिया जाता है। जैमिनी कृत मीमांसा सूत्र पर कुमारिल भट्ट ने ईसा की सातवीं सदी में श्लोक वार्तिक, तन्त्रवार्तिक और दुप्टी ये तीन टीकाएँ लिखीं। मीमांसादर्शन में सामान्यतः पाँच प्रमाण माने गये हैं— प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, अर्थापत्ति, शब्द। कुमारिलभट्ट ने छठा अभाव प्रमाणं भी माना है।

जैनदर्शन में जैसे द्रव्य का लक्षण उत्पाद-व्यय ध्रौव्यात्मक माना है तथा द्रव्य स्वरूप से ध्रौव्यात्मक और अपनी पर्यायों से उत्पादव्ययात्मक है, द्रव्यनित्य है और पर्याय अनित्य। वैसे ही मीमांसा दर्शन में भी द्रव्य-पर्याय के नित्यानित्यत्व को इस प्रकार प्रकट किया

---

[१] टीकाकार नालाराम उदासीन
[२] योगसूत्र — विभूतिपाद सूत्र १३
[३] योगसूत्र, समाधिपाद सूत्र ७
[४] योगसूत्र, विभूतिपाद सूत्र १४
[५] योग सूत्र, विभूतिपाद सूत्र ४७

तन धन बल अरु बुद्धि का, उचित नहीं अभिमान ।
जयन्तसेन मिले सदा, कदम कदम अपमान ॥
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गया है—

अतो न द्रव्यस्यकदाचिदागामापायोवा
घटपटगवाश्च शुक्लरक्ताद्यवस्थानामेवागमापायौ - आह च -
आविर्भाव - तिरोभाव - धर्मकेष्वनुयायिमत् ।
तद् धर्मी तत्रच ज्ञानं प्राग्धर्मग्रहणात् भवेत् ॥
तथा च यादृशमस्मामिरभिहितं द्रव्यं तादृश—
स्यैव हि सर्वस्य गुणएव भिद्यते न स्वरूपम् ।[१]

अर्थात् द्रव्य की कभी उत्पत्ति और विनाश नहीं होता है, किन्तु उसके रूप और आकारादि विशेष का ही उत्पत्ति-विनाश होता है। कहा है— उत्पत्ति और विनाशशील धर्मों में अन्वय रूप से जिसकी उपलब्धि होती है, वह धर्मी और उसका ज्ञान प्राग्धर्म के ग्रहण से होता है अत: उत्पाद-विनाश स्वभावी धर्मों में मिट्टी रूप द्रव्य-धर्मी सर्वत्र अनुगत रहता है। अन्य विद्वानों की अपेक्षा कुमारिलभट्टने स्पष्ट शब्दों में अनेकान्तवाद का समर्थन किया है। कुमारिल भट्ट का पदार्थों को उत्पाद, स्थितिरूप सिद्ध करना, अवयव को स्वरूप एवं पर-रूप से सत् असत् स्वीकार करना तथा सामान्य विशेष को सापेक्ष मानना अनेकान्तवाद का समर्थन करना ही माना जाता है। इस प्रकार आचार्य कुमारिल भट्ट ने वस्तु विवेचन के लिए अनेकान्तवादात्मक शैली का अनुसरण किया है। दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते हैं कि आचार्य कुमारिल भट्ट जैन दार्शनिक हैं।

वैशेषिक - दर्शन में स्याद्वाद :

यह दर्शन विशेष (परमाणु) से सृष्टि की उत्पत्ति मानता है अत: इसका नाम वैशेषिक दर्शन है। इस दर्शन के आद्यप्रवर्तक कणाद ऋषि माने जाते हैं। वैशेषिक दर्शन में प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो प्रमाण स्वीकार किये गये हैं। वैशेषिक सूत्र के अनुसार द्रव्यत्व, गुणत्व और कर्मत्व ये सामान्य भी हैं और विशेष भी।[२]

प्रशस्तपाद - भाष्य में उक्तसूत्र की व्याख्या करते हुए जैन-दर्शन के मंतव्य की तरह सामान्य-विशेष उभय रूप में मानकर स्पष्ट रूप में कहा है—

"सामान्यं द्विविधं परमपरं सद्विशेषाख्यामपि लभते ।'

सारांश यह है कि सामान्य सिर्फ सामान्य है रूप ही नहीं है किन्तु विशेष रूप भी है। द्रव्यत्व, गुणत्व आदि यद्यपि सामान्य रूप हैं लेकिन सत्ता की अपेक्षा उनमें विशेषत्व और पृथ्वीत्वादि की अपेक्षा सामान्य रूपता यह दोनों ही धर्म रहते हैं।

इस प्रकार महर्षि कणाद ने स्पष्ट रूप से अनेकान्तवाद का प्रतिपादन किया है। भाष्यकार लिखते हैं—

तदेवं रूपान्तरेण सदप्यन्येन रूपेण सद् भवतीत्युक्तम्....
अश्वात्मना सन्नप्यश्वो न गवात्मनास्तीति ।[३]

[१] शास्त्रदीपिका पार्थसार मिश्र रचित पृ. १४६-१४७

[२] 'द्रव्य व्वं गुणव्वंकर्मत्वं च सामान्यानि विशेषाश्च ।'
— वैशेषिक सूत्र १/२/५

[३] वैशेषिक भाष्य — पृ. ३१५

उपर्युक्त सूत्रों में उपस्कार एवं भाष्य का आशय यह है कि घर अपने निजी स्वरूप से तो है और पररूप से नहीं है अश्व अपने अश्व स्वरूप से सत् है और गौ रूप से असत् है। इसका अर्थ यह हुआ कि घरादि प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूप की अपेक्षा सत् और परादि प्रत्येक पर-रूप की अपेक्षा से असत् है इस कथन से यह सिद्ध हुआ कि प्रत्येक पदार्थ स्व पर रूप की अपेक्षा सत्-असत् दोनों रहते हैं। इसी बात को अनेकान्तवाद भी व्यक्त करता है कि प्रत्येक पदार्थ स्व-पर रूपापेक्षा सदसदात्मक है।

न्यायदर्शन में स्याद्वाद :

प्रत्येक वस्तु को न्याय की कसौटी पर कसना न्याय दर्शन है। इस दर्शन के आद्य प्रवर्तक महर्षि गौतम हैं। नैयायिक दर्शन में प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन आदि १६ तत्त्व माने जाते हैं। महर्षि गौतम के अनुसार सोलह तत्त्व का ठीक-ठीक ज्ञान होने से मुक्ति होती है। महर्षि गौतम के न्यायसूत्र के भाष्यकार वात्स्यायन ने पदार्थ विवेचन में निम्न प्रकार से अनेकान्तवाद का आश्रय लिया है—

विमृश्य पक्ष प्रतिपक्षाभ्यामर्थावधारणं निर्णय :[४]
एतच्च विरुद्धयोरेकधर्मिस्थयो र्बोधव्यं, यत्र . . ...

अर्थात् पक्ष-प्रतिपक्ष द्वारा विचार करके पदार्थ को जो निश्चय किया जाता है, उसे निर्णय कहते हैं। परंतु यह विचार करने का अवसर तभी आता है जब एक धर्मी में विरुद्ध धर्मों की स्थिति हो। लेकिन जहाँ धर्मी सामान्य में धर्मों की सत्ता प्रामाणिक रूप से सिद्ध हो वहाँ पर समुच्चय ही मानना चाहिये, क्योंकि प्रामाणिक रूप से ऐसा ही सिद्ध है। वहाँ पर तो परस्पर विरुद्ध दोनों ही धर्मों को स्वीकार करना चाहिये। इस प्रकार न्याय दर्शन में यथा प्रसंग अनेकांतवाद का आश्रय लेकर ग्रंथकारों ने अपने सिद्धान्त का पोषण किया है।

वेदान्त - दर्शन में स्याद्वाद :

इस दर्शन का निर्माण वेदों के अन्तिम भाग उपनिषदों के आधार से हुआ। इस कारण वह वेदान्त - दर्शन कहलाता है। सर्व प्रथम वेदान्त दर्शन उपनिषदों में पाया जाता है। वेदान्त का प्रधान सिद्धान्त 'एको ब्रह्म द्वितीयं नास्ति' है। वेदान्त के अनुसार व्यक्ति को सदा तत्त्वमसि का ही ध्यान करना चाहिए।

प्रवृत्ति और निवृत्ति इन दोनों विरोधी धर्मों को प्रकृति में नहीं मानकर ईश्वर में स्वीकार करने के लिए शंकराचार्य ने अनेकान्तवाद का ही आश्रय लिया है। परस्पर विरुद्ध प्रतीत होने वाले धर्मों को सापेक्ष रूप से एक वस्तु में स्वीकार करना ही तो अनेकान्तवाद है। शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र के शांकर भाष्य में अनेक स्थलों पर अपेक्षावाद का आश्रय लेकर अपने मत को अभिव्यक्त किया है एवं उनका अनिर्वचनीय शब्द तो अनेकान्तवाद के आशय को ही स्पष्ट करता है।

[४] न्याय सूत्र १।१।४१

असभ्य बन कर मानवी, क्यों करता अभिमान ।
जयन्तसेन सभ्य बनो, जीवन बने महान ॥
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार वेद, उपनिषद्, गीता आदि सभी में अनेकान्तवाद का आश्रय लिया गया है, कारण कि स्वयं पदार्थ है जो अनन्त धर्मात्मक है और उन अनन्त धर्मों की अभिव्यक्ति के लिए कथन प्रणाली तदनुरूप ही होनी चाहिए।

बौद्ध - दर्शन में स्याद्वाद :

बुद्ध की मान्यता बौद्धदर्शन कहलाता है। जैन - धर्म में वर्णित १४ गुणस्थानों की भांति बौद्धधर्म में भी १० पारमिताएँ मानी गई हैं। जैनधर्म के अनुसार जैसे तेरहवें गुणस्थान में पहुँचने पर जीव जिन बनता है, वैसे ही बौद्धधर्म के अनुसार दसवीं बोधिसत्व भूमि में जाने के बाद जीव बुद्ध बनता है। बौद्ध दर्शन को सुगत दर्शन भी कहते हैं।

अनेकान्तवाद को ध्वनित करने वाला दूसरा शब्द विभज्यवाद भी आगमों में देखने को मिलता है। बौद्ध-ग्रन्थ मज्झिमनिकाय (सूत्र ९९) में शुभ माणवक के प्रश्न के उत्तर में बुद्ध ने अपने को विभज्यवादी बताया है, एकांशवादी नहीं। मज्झिमनिकाय सूत्र (९९) से तथागत बुद्ध के एकान्तवाद और विभज्यवाद का परस्पर विरोध स्पष्ट सूचित हो जाता है और जैन टीकाकारों ने विभज्यवाद का अर्थ स्याद्वाद, अनेकान्तवाद किया है। भगवतीसूत्र में अनेक प्रश्नोत्तर हैं, जिनमें भगवान् महावीर की विभज्यवादी शैली के दर्शन होते हैं।

इस प्रकार स्याद्वाद में न तो निरपेक्ष काल्पनिक वस्तु है और न प्रत्यक्षादि प्रमाण विरुद्ध काल्पनिक दृष्टिकोण। देशकाल की सीमाओं के बन्धन से भी परे उसकी दृष्टि है, उसके नियम सार्वदेशिक और सार्वकालिक हैं। जिसके कारण कोई भी दर्शन उसका अंग बन सकता है। यदि सभी दर्शन अपने अन्तर्विरोधों को समाप्त कर परस्पर सहयोग स्थापित करना चाहते हैं तो उनके लिये स्याद्वाद स्वीकार करने के अलावा अन्य कोई उपाय नहीं है। समन्वय के लिए स्याद्वादात्मक दृष्टि अपनाने की प्रक्रिया वर्तमान में चालू हो गई है। और उसकी पूर्णता होने पर सम्पूर्ण विश्व सह-अस्तित्व की सुधा का पान कर सकेगा, ऐसी आशा है।

भारतीय दार्शनिक परम्परा में स्याद्वाद का कहाँ किस रूप में प्रयोग हुआ है उसका संक्षेप में दिग्दर्शन कराया गया है। जिससे यह स्पष्ट है कि अनेकान्तवाद यथार्थ रूप से वस्तुरूप का निर्णय करने वाला सुनिश्चित सिद्धान्त है। अन्य दर्शनों ने किसी न किसी रूप से इसे अपनाया है, इसी कारण यह कहा गया है कि —

स्याद्वादं सार्वतांत्रिकम्।

महान् आचार्यों ने स्याद्वाद की संस्तुति करते हुए कहा है—

जेणविणा लोगस्स-वि ववहारो सव्वहान निव्वडइ ।
तस्स्स भुवणेक्क-गुरुणो णमो अणेगंतवायस्स ॥

मुक्ति का मार्ग ..... (पृष्ठ ५९ का शेष)

(१) सामायिक (२) छेदोपस्थापनीय (३) परिहार विशुद्धि (४) सूक्ष्मसंपराय और (५) यथाख्यात चारित्र। मुख्य चारित्र के दो प्रकार हैं— द्रव्य चारित्र और भाव चारित्र। आत्मा के उद्धार और मोक्ष सुख प्राप्ति का आधार भाव चारित्र है।

मात्र द्रव्यचारित्र से मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है, द्रव्य चारित्र का पालन तो अभव्य जीव भी कर सकते हैं पर वे मोक्ष में नहीं जा सकते, किन्तु द्रव्य चारित्र के बिना भाव चारित्र प्राप्त करना कठिन है।

संयम के सत्रह भेद भी है।

पाँच आश्रवों का त्याग, पांच इन्द्रिय का निग्रह, चार कषाय पर विजय और तीन दंड से निवृत्ति ये १७ भेद हैं।

संसार रूप अटवी में भटकते हुए भव्यात्माओं को मोक्षमार्ग की तरफ ले जाने वाला चारित्र मार्गदर्शक है, आत्मा के लिए जीवन के विकास के लिए और मोक्ष में जाने के लिए चारित्र सच्चा मार्ग है। समस्त सावद्य योग से रहित शुभ-अशुभ रूप कषाय भाव से विमुक्त जगत से उदासीनता रूप निर्मल आत्मलीनता ही सम्यग् चारित्र है।

"तत्रादौ सम्यक्त्वं समुपाश्रयणीयमखिलयत्नेन ।
तस्मिन् सत्येव यतो भवति ज्ञानं चारित्रं च ॥"

• सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान, सम्यग् चारित्र इन तीनों में सबसे पहले सम्यग्दर्शन को पूर्व रूप से प्रत्यय करके प्राप्त करना चाहिए, क्योंकि इसके होने पर ही ज्ञान सम्यक्ज्ञान रूप और चारित्र सम्यक्चारित्र रूप परिणत होता है।

सम्यग् दर्शन के बिना समस्त ज्ञान अज्ञान और समस्त महाव्रतादि रूप शुभाचरण मिथ्याचारित्र ही रहता है।

सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र को रत्नत्रयी भी कहते हैं और यही मुक्ति का मार्ग है।

येनांशेन सुदृष्टिस्तेनांशेनास्य बंधनं नास्ति
येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बंधनं भवति
येनांशेन ज्ञानं तेनांशेनास्य बंधनं नास्ति
येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बंधनं भवति
येनांशेन चारित्रं तेनांशेनास्य बंधनं नास्ति
येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बंधनं भवति

इस आत्मा के जिस अंश में सम्यग्दर्शन है, सम्यग्ज्ञान और चारित्र है उस अंश में बंधन नहीं है और जिस अंश में राग है उस अंश में बंधन होता है।

अतः यदि हमें बन्ध का अभाव करना है अर्थात् दुःख से छुटकारा पाना है तो रत्नत्रयी परिणमन करना चाहिए, एक मात्र सांसारिक दुःखों से छूटने के लिए यही सच्चा मुक्ति का मार्ग है।

□ ■

मैं मैं करना छोड़ दे, मत कर नर अभिमान ।
जयन्तसेन बड़े बड़े, छोड़ चले नीज प्राण ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org